

जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक

ककसाड़

वर्ष 11 अंक 126 / सितंबर, 2026

मूल्य : 25/- रुपए



ISSN 2456-2211

दिल्ली
से
प्रकाशित



ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

सितंबर 2026

वर्ष-11 • अंक-126

संस्थापना वर्ष 2015

प्रबंध एवं परामर्श संपादक

कुसुमलता सिंह

संपादक

डॉ. राजाराम त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार

फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

ग्राफिक डिजाइन

रोहित आनंद

• मुख्य कार्यालय एवं रचनाएँ भेजने का पता •

सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन,

पटपड़गंज, दिल्ली-110092

फोन: 9968288050, 7048905277

• संपादकीय कार्यालय •

151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोण्डागाँव, छ.ग.-494226

फोन: 9425258105, 07786-242506

ई-मेल : kaksaaeditor@gmail.com

kaksaadoffice@gmail.com

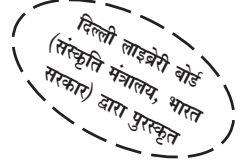
वेबसाइट : www.kaksad.com

मूल्य : रु. 25 (एक प्रति), वार्षिक : रु. 350/- संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : रु. 500/- वार्षिक (विदेश) : \$110 यू.एस। आजीवन व्यक्तिगत : रु. 3000/- संस्था : रु. 5000/-

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

• ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे • कुसुमलता सिंह स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक।

अनुक्रम



4. संपादकीय

साक्षात्कार

6. भील कला में ऋतुओं का त्यौहार के साथ और त्यौहार का जीवन के साथ संयोजन (भील युवा कलाकार राकेश भाभोर के साथ कुसुमलता सिंह की बातचीत)

लेख/शोध-आलेख

9. आदिवासी जीवन दृष्टि में स्त्री पक्ष : पुनीता जैन

13. राष्ट्रकवि दिनकर के संसदीय वक्तव्यों में साहित्य की चिंता : डॉ. अनुज

17. बस्तर की आदिवासी कलाओं में अनुष्ठान, मिथक और नाटकीय परंपरा : दीप्ति ओग्रे

21. गोदना— जनजातीय महिलाओं का चिरसंगी आभूषण

: डॉ. भागेश्वर पात्र

23. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हाशिए का हिंदी सिनेमा

: ममता कुमारी

कहानी

28. प्लास्टिक की गुड़िया : रजनी शर्मा बस्तरिया

31. भारोंग पक्षी का नाच : लेखक-श्यामल भट्टाचार्य , अनुवाद-कुमार शाश्वत

कविताएँ/गज़लें/फुटकर शेर

41. डॉ. फूलचंद गुप्ता, 42. रोहित ठाकुर 42. मुकुल शर्मा

44. माधव कौशिक

निबंध

38. 'गैंगा', 'यामिना' और हेनरी मूर : धर्मवीर भारती

लोक-पर्व

48. अन्न बटिया बटा

पुस्तक समीक्षा

45. पंख का नुचना : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

46. आवाज घर : अंजू केशव

30. कहावतें

16. क्या है ककसाड़?

20. यादें

49. साहित्यिक समाचार

आवरण कलाकृति युवा भील कलाकार - राकेश भाभोर

मो.: 81208-40989

आज जब मैं यह लिख रहा हूँ तो मुझे देश में, विशेष कर हिंदी पट्टी में 'हिंदी-दिवस', 'हिंदी सप्ताह', 'हिंदी पखवाड़ा' आदि मनाने की तैयारियों की गूँज सुनायी दे रही है। सितंबर एक ऋतु संक्रमण का मास भी है, जहाँ वर्षा ऋतु समाप्ति की ओर है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने वर्षा के इस अवसान काल तथा शरद आगमन के इस संधिकाल का बड़ी सहजता और गहरी संवेदना के साथ वर्णन किया है—

‘बरषा बिगत सरद रितु आई।

लछिमेन देखहु परम सुहाई’

अर्थात् देखो लक्ष्मण, वर्षा विदा हो रही है और शरद सुहावने स्वरूप में धरती पर उतर रही है। ऋतु परिवर्तन अपने साथ एक अलग ही सौंदर्य लेकर आता है। तुलसीदास जी के लिए यह केवल मौसम का बदलना नहीं, बल्कि प्रकृति के एक रूप से दूसरे रूप में काया प्रवेश करने का अद्भुत दृश्य है। कहीं आसमान में हल्के-फुल्के कपसीले बादल हैं, तो कहीं रिमझिम फुहारें और कहीं अचानक चटख धूप की असहनीय चुभन जो सितंबर में ही अक्टूबर की 'ऑक्टेन-हीट' का एहसास करा रही है। धरती की भीगी हुई गंध के बीच एक अजीब-सी ताजगी भी है और गजब की बेचैनी भी। मौसम चाहे जैसा भी हो, इसके साथ एक और शाश्वत सच्चाई भी जुड़ी है, वह है लगातार 'परिवर्तन' की। इस संदर्भ में हेराक्लिटस (Heraclitus) ने क्या गजब बात कही है कि- “इस दुनिया में एकमात्र चीज जो स्थिर है, वह है परिवर्तन।” सो, परिवर्तन की यह सतत प्रक्रिया मौसम के अलावा हमारी बोली-भाषा और हमारी सांस्कृतिक चेतना में भी निहित है। बादलों की गड़गड़ाहट, खेतों में लहलहाती फसलें और मिट्टी की सोंधी खुशबू हमें यह याद दिलाती है कि भाषा भी प्रकृति की तरह ही जीवंत होती है। वह बोई जाती है, उगती है, फैलती है और समय के साथ बदलती है। लेकिन दुखद यह है कि जिस तरह हम अपनी मिट्टी को छोड़कर बाहरी रासायनिक निर्भरता की ओर बढ़ रहे हैं, उसी तरह हम अपनी भाषाई मिट्टी से भी दूर होते जा रहे हैं।

आजादी के बाद पिछले 8 दशकों में हमने खूब हिंदी दिवस, सप्ताह, पखवाड़े मनाये। बहुतेरे भाषण हुए, प्रचुर पुरस्कार भी बंटे पर हुआ क्या? अगले दिन ही फाइलें फिर से उछलकर अंग्रेजी की गोद में जाकर बैठ गईं ! क्या यह बेहतर नहीं होगा कि अब आगे से हर साल 14 सितंबर से 14 अक्टूबर तक पूरी लगन और ईमानदारी से “हिंदी मास” मनाया जाए। इस एक महीने में हर संभव काम हिंदी में करने का सही मायनों में प्रयास किया जाए और जो काम हिंदी में वर्तमान में संभव नहीं हैं, उन्हें हिंदी में संभव बनाने की ईमानदार कोशिश की जाए। आगे क्रमशः इसे त्रैमासिक, छमाही और फिर धीरे धीरे इसे स्थायी कार्य-संस्कृति बनाया जा सकता है।

हिंदी आज बाजार की सशक्त भाषा और साहित्य की स्थापित भाषा है, संगीत टेलीविजन और फिल्मों की मुखर भाषा है। लेकिन कितने ही अंतरराष्ट्रीय हिंदी दिवस, वैश्विक हिंदी दिवस मनाने के बावजूद आज भी इंटरनेट पर हिंदी वेबसाइटें 0.1% से भी कम हैं। इसीलिए मैं प्रायः कहता हूँ कि, हिंदी मंच की शेरनी है, लेकिन दफ्तर और डिजिटल दुनिया में आज भी मिमियाती बकरी है! अब समय आ गया है कि यह शेरनी की तरह अपने ही कार्यालयों, विश्वविद्यालयों, प्रयोगशालाओं, न्यायालयों और डिजिटल संसार में दहाड़ना सीखे। अब हिंदी को सिर्फ बोलना नहीं है, हिंदी में सारे काम करना है, हिंदी को ज्ञान विज्ञान की भाषा बनाना है, हिंदी में ज्ञान पैदा करना है और हिंदी को रोजगार की भाषा बनाना है। अब जब हम इस भाषाई विमर्श से आगे बढ़ते हैं तो प्रकृति की ओर लौटना स्वाभाविक है।

हिंदी की स्थिति आज एक अजीब विरोधाभास में खड़ी है। 2011 की जनगणना के अनुसार 52.83 करोड़ से अधिक लोगों ने हिंदी को अपनी मातृभाषा बताया, जो देश की कुल आबादी का लगभग 43.63 प्रतिशत है। यदि प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाषा के रूप में हिंदी जानने वालों को जोड़ दें तो यह संख्या लगभग 69 करोड़ तक पहुँचती है। फिर भी डिजिटल दुनिया में हिंदी की हिस्सेदारी लगभग शून्य (0.1 प्रतिशत से भी कम) ही है। यह केवल आंकड़ा नहीं, बल्कि हमारी मानसिकता का आईना है। संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। इसके बाद

